महर्षि मुक्त सूत्र-सागर (प्रथम तरंग)

महर्षि मुक्त सूत्र-सागर

(प्रथम तरंग)

प्रकाशकः- महर्षि मुक्त साहित्य प्रचारक समिति (केन्द्र दुर्ग)

प्रकाशन ६

मूल्य-१-५०

भावोद्गार

महर्षि मुक्त सूत्र सागर में संकलित सूत्र, व्यापक व्याप्य अखंड अनन्ता-अनंत रूप शब्द-ब्रह्म महोदधि की हिलोरें हैं। एक ही हिलोर-सूत्र का स्पर्श (हृदयंगम हो जाना) ब्रह्म स्पर्श संस्पर्श प्रदान करने की क्षमता रखता है।

यह प्रशंसा नहीं - अनुभवोद्गार है।

परमानन्द शास्त्री
अध्यक्ष
महर्षि मुक्तानुभूति साहित्य प्रचारक
समिति केन्द्र दुर्ग (म. प्र.)

महर्षि मुक्त सूत्र-सागर

(प्रथम तरंग)

१. व्यक्तित्व के लोप में ईश्वरत्व निहित है ।

२. जीवत्व एवं ईश्वरत्व दोनों का अभाव ही ईश्वरत्व है ।

३. स्वदेश का नागरिक बनो, पर-देश का नहीं ।

४. स्वदेश का बिना नागरिक बने नार्गारकता भी अस्तित्वहीन है ।

५. स्वदेश में सोमा की भी सीमा नहीं है।

६. जहाँ स्वत्व ही देश है वही स्वदेश है।

७. स्वत्व, परत्व दोनों भावों का जो अभाव उसका जो भाव वही स्वदेश है ।

८. जहाँ का नागरिक बनने के लिए सारा विश्व प्रयत्नशील है ।

९. जहाँ पहुंचकर सभी देशों के पासपोर्ट रद्द हो जाते हैं वही स्वदेश है ।

१०. जहाँ जाना है वहीं पर खड़ा है, वही स्वदेश है

११ जिस मुल्क से जुदा होने पर खुदा की भी हस्ती नेस्त नाबूद हो जाती है, वही स्वदेश है

१२. जिसकी तलाश ही देश की जुदाई है, वह स्वदेश है ।

१३. स्व स्थिति राष्ट्रपति है।

१४. अर्थाभाव ही प्रधानमंत्री है ।

१५. विधि-निषेध का अत्यन्ताभाव ही विधान है।

१६. अस्तित्वहीन प्रपंच ही प्रजा है।

१७. अक्रियता ही शाही सेना है।

१८. निस्पृहता ही शाही कोष है ।

१९. सहजावस्था ही शाही तख्त है ।

२०. 'मैं' शहन्शाह है।

२१. 'मैं' के अतिरिक्त कुछ भी नहीं, यही अंग- रक्षक है। वस्तुतः यही देश स्वदेश है ।

२२. ब्रह्मभ्यास न करने का अभ्यास ही ब्राह्मी स्थिति है ।

२३. स्थिति अस्थिति के अभाव का भाव ही स्वभाव है ।

२४. चित का अर्थ ही चित्त है, शेष चित है।

२५. चित ही चित्त, चित्त ही चित है,
चित विज्ञापक, चित ही चित्त ।
चित विकल्प, विकल्पक चित है,
चित्त विवर्त, विवर्तक चित ।
चित है बिम्ब, चित्त प्रतिबिम्बत,
चित सागर आवर्त है चित्त ।
चित्त अचित्त उभय तज, चित भज,
चटपट हो सब अन्टचित्त ।।

२६. सिद्धांत की अभिव्यक्ति में व्यक्ति का व्यक्तित्व निहित है ।

२७. व्यक्तित्व के प्रदर्शन में सिद्धान्त तिरोहित हो जाता है।

२८. स्वरुपस्थिति दृढ़ कैसे हो इस विकल्प के अभाव देश में स्वरुपस्थिति दृढ़ है।

२९. अदृढ़ से अतीत और दृढ़ से परे जो पद है वही दृढ़ स्थिति है ।

३०. जिस देश में दृढ़ अदृढ़ दोनों भाव वन्ध्या- पुत्रवत् हैं वही दृढ़ स्थिति है ।

३१. यदि दृढ़ का विकल्प दृढ़ है तो दृढ़ का विकल्प नहीं और यदि अदृढ़ है तो अदृढ़ का भी विकल्प नहीं ।

३२. विकल्पक यदि विकल्प है तो विकल्प नहीं और यदि अविकल्प है तो भी विकल्प नहीं ।

३३. विवर्त कैसा अनोखा जादूगर है कि : विवर्तक को अपने अभावकाल में छुपा रखा है।

३४ अर्थ विवर्त है, वस्तु विवर्तक है।

३५. गमनागमन के अस्तित्व में मुक्ति का प्रयास आडम्बर है।

३६ जीव के जीवत्व का यदि अस्तित्व है तो वह वस्तुतः अस्तित्व है ।

३७ मैं कैसा लामिशाल बेवकूफ हूं कि 'मैं' को 'मैं' ही ढूंढ़ रहा हूं ।

३८ मैं कैसा तअल्लुक से बरी हूं कि जो भी. देखने चलता है वह भी 'मैं' ही हो जाता है।

३९. 'मैं' के ओढ़ने की आसमानी चादर कैसो फरजी और झीनी है कि इसका उठाना हर एक के लिए दुश्वार है ।

४०. बोध बिना बोध के बोध का बोध भी नहीं होता ।

४१. खुद विना खुद के खुद का खुद चश्मदीद नहीं होता ।

४२. नारायण तत्व के बोध का यही स्वरूप है कि मैं क्या हूं इस विकल्प का सदा के लिए अभाव हो जाय ।

४३. पूर्ण बोध के अभाव में ही समाधि के विकल्प का विकल्प है।

४४. आत्मकल्याण के साधन का फल आत्मदर्शन की व्याकुलता है ।

४५. अस्तित्वहीन जीव को भगवद्दर्शन में कोई अधिकार नहीं ।

४६. मंदिर मस्जिद आदि भगवान वियोग के शोकस्थल है ।

४७. जो तीन काल में न हो, सत्य वस्तु को छुपाले उसको विवर्त कहते हैं।

४८. अस्तित्वहीन विवर्त ही विवर्तक है।

४९. मन के भाव अभाव के भाव का अभाव जि देश में हो जाता है वह 'मैं' है ।

५० पदार्थ के अस्तित्व को स्वीकार करना ही पदार्थ का अर्थ है।

५१. अस्तित्वहीन पदार्थ यदि भासता है तो वह अस्तित्व ही है।

५२. दृष्टि के अभाव में यदि सृष्टि है तब सृष्टि है, नहीं तो दृष्टि ही सृष्टि है।

५३ विकल्प भाव में जो भामता है और अभाव मे नहीं भासता वह विकल्प है।

५४. भाव अभात्र दोनों में जो भासता है वह विकल्प है।

५५. विकल्प का अनुरूप विकल्प में ही निहित है, पदार्थ में नहीं।

५६ अपने मैं को कुछ भी न मानने पर ही मन वश में होता है।

५७ अपने मैं को कुछ भी न मानने पर 'मैं' स्व- भाव हूं और कुछ भी मानने पर पर भाव हूं।

५८. शंकाओं का मूलोच्छेद निःशंकानुसंधान में निहित है।

५९. शंकाओं का पुज्ज निःशंक की उपेक्षा का परिणाम है।

६०. बोध बिना ध्यान धारणा आदि पेंसिल की लकीर है।

६१. भगवान को कुछ मानने से मैं का कुछ नहीं बिगड़ता और 'मैं' को कुछ भी मानने से भगवान कलंकित हो जाता है।

६२. मैं ब्रहम हूँ, यह वैषम्य भाव है और 'मैं हूं' यही समभाव है अथवा श्री गीताकार के शब्दों में समत्व योग है।

६३. मैं ब्रहम हूँ इस भाव के चिन्तन मे देशकाल की सीमा है और 'मैं' हूं, इस भाव में सीमा की भी सीमा नहीं है।

६४. खींची हुई रेखा मत मिटाओं अपितु बड़ी रेखा खींच दो।

६५. किसी भी देश, काल, वस्तु के अर्थ को ग्रहण न करना ही आर्थिक विकास है।

६६. जो वस्तु जैसी है उसको वैसे ही जानना ही नैतिक उत्थान है।

६७ सम विषम दोनों भावों के अभाव के भाव की एकता ही राष्ट्रीय एकता है।

६८ समस्त जगत के विकल्प भाव का अभाव ही सामाजिक सुधार है।

६९. मैं के अतिरिक्त मैं में अन्य भाव न आना ही राष्ट्र की प्रगति है ।

७० शत्रु मित्र दोनों विकल्प के विकल्प का त्याग ही राष्ट्र की विजय है ।

७१ अपरिच्छिन्न में परिच्छिन्न भाव न आना ही राष्ट्रीय अक्षुण्ण ध्वज है ।

७२. जो व्यक्तित्व का बाधक एवं विक्षेप का कारण हो वह भगवान ही क्यों न हो, सर्वथा त्याज्य है।

७३. त्याज्य वस्तु के त्याग में चित्त यदि दूर भागता है तो उसके मोहासक्त का कारण है।

७४. सर्व के त्याग में ही कैवल्यपद निहित है ।

७५ ब्रह्म परिपूर्ण है इसलिए विश्व विवर्त भी परिपूर्ण है ।

७६. यह ब्रह्म है, यह जगत है, दोनों विकल्पों के अभाव में ही ब्रह्मानंद निहित है ।

७७. सर्व कुछ 'मैं' हूं- यह विधि वाक्य है, 'मैं' सर्व से परे हूं- यह निषेध वाक्य है । दोनों भावों का अभाव सहज मुस्कान है ।

७८ सहज मुस्कान ही भगवान का ध्यान है, ऐसा ध्यान ही चित्त का समाधान है ।

७९. प्रपंच की अनिर्वचनीयता आत्मा का अनुरुप है।

८०. जो सहज है वह सहज है।

८१. अभ्यास न करने का अभ्यास सहजानुभूति में निहित है ।

८२. त्याग करने का त्याग, ग्रहण-त्याग के त्याग में तिरोहित है ।

८३. ग्रहण त्याग दोनों का त्याग स्वानुभूति का पराग है ।

८४. स्वानुभूति की अनुभूति ब्रह्माण्ड की विभूति है।

८५ ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिक का भी सामर्थ्य सुनकर अथवा देखकर स्वप्न में भी चित्त डांवाडोल न हो यही आत्मनिष्ठा है ।

८६. शरीर का कोई भी अंग भंग हो जाने पर जिस प्रकार मनुष्य खंडित हो जाता है इसी प्रकार एक कण को भी भगवान से भिन्न मानने पर भगवान की अखंडता खंडित हो जाती है।

८७. मैं जीव हूं, यह विकल्प जीवकृत नहीं भगवान कृत है ।

८८. लक्षण प्रमाण से जो सिद्ध हो वह सिद्धान्त है और जो प्रतिज्ञावाक्य से सिद्ध हो वह अपवाद है ।

८९. सिद्धान्त वास्तविक होता है, अपवाद वैकल्पिक ।

९०. किसी भी देश, काल, वस्तु के अत्यन्ताभाव में ही, (मिथ्यात्व में नहीं, दुःख की आत्यन्तिक निवृति है ।

९१. आत्मनिष्ठा अनन्त शक्तियों का स्रोत है।

९२. आत्मनिष्ठा का स्वागत अनन्त शक्तियों का आवाहन है।

९३. जो तीन काल में है ही नहीं वह असत्य है।

९४. जो उत्पन्न होकर नाश हो जाय वह मिथ्या है।

९५. अन्य में अन्य का भान होना अध्यास है।

९६. भान में अहंभाव होना अभिमान है ।

९७. मन, वचन,कर्म द्वारा जो भजन किया जाय वह माया का है, भगवान का नहीं।

९८. मैंने भजन किया, कर रहा हूँ, करुंगा इन तीनों विकल्पों का अभाव ही परम भजन है।

९९. अस्वाभाविक माया का भजन है, स्वाभाविक भगवान का ।

१००. अस्वाभाविक माया है, स्वाभाविक स्वभाव (मायापति 'मैं')

१०१. स्वभाव में कुछ भी विकल्प देखना ही माया है ।

१०२. 'माया है' इस विकल्प भाव के अभाव का अनुभव करना ही माया से तरना है ।

१०३. भाव का भाव और अभाव का भाव दोनों भावों का जो अभाव, वही स्वभाव है ।

१०४. विकल्प के अत्यन्ताभाव में ही विकल्प का त्याग निहित है ।

१०५. प्रश्न- यार, दुनिया तुझे खुदा क्यों कहती है ?

उत्तर- इसलिए कि कहनेवालों का खुद हूँ ।

१०६. प्रश्न- यार, सबका खुद होने से तेरा मिलना बड़ा आसान है फिर तेरी तलाश में दुनिया क्यों मुब्तिला है?
उत्तर- तलाश हीतो मेरे छुपने की झाड़ी है ।

१०७. प्रश्न- जब सभी का तू खुद है तो छुपना किससे ?
उत्तर- ऐसा सवाल ही बेवकूफी है ।

१०८. मन, वचन, कर्मजन्य परिच्छिन्न कार्य में विक्षेप आ जाने पर जब विक्षेप नहीं होता तो अपरिच्छन्न कार्य (आत्मचिन्तन) में विक्षेप से विक्षेप क्यों ?

१०९. विक्षेप का विकल्प होना ही विक्षेप है ।

११०. विकल्प का विकल्प होना स्वानुभूति की शून्यता का परिचायक है।

१११. आत्म चिंतन की चिंतन भाव में जीवभाव निहित है और अचिंतन भाव में स्वत्व भाव निहित है ।

११२. जीवत्व भाव के अभाव में ही ऐहिक पारलौकिक कतृत्व भावों का अभाव है ।

११३. किसी काल अथवा किसी भी परिस्थिति में भजन करने का संकल्प ही ना हो, बस यही परम भजन है किंतु यह है कृपा साध्य (इतना ही है कृपा साधु बाकी सब साधन साध्य है ।

११४. यार का मिलन इतना आसान है की जिसकी आसानी ही परेशानी है

११५. यार इतना खूबसूरत है कि जिसकी खूबसूरती ही बदसूरती है ।

११६. यार इतना लबालब है कि जिसमें तमाम खामियां ही नजर आती है ।

११७. चुनाचे यार के मुतअल्लिक जो कुछ भी कहना हो तो गंगा बनाकर कहो ।

११८. ध्यान का भी ध्यान न करना ही ध्यान है ।

११९. देखने को भी न देखना ही दर्शन है।

१२० कुछ भी जानने की इच्छा न करना ही ब्रह्य जिज्ञासा है ।

१२१. मन का अक्रिय हो जाना ही अक्रियपद है ।

१२२. मन को अक्रिय बनाने के लिए मन, वचन, कर्म द्वारा कुछ भी साधन न करना ही परम साधन है ।

१२३. साधन करने से मन अक्रिय होता है। (मन) साधन न करने से मन अक्रिय हो जाता है। (स्वभाव)

१२४. कुछ भी न करने का अभ्यास करना ही अभ्यास है ।

१२५. मनोजन्य भाव का अभाव परभाव में निहित है, मन भाव का अभाव स्वभाव में निहित है।

१२६. परभाव में ही अभ्यास का विकल् है स्वभाव में नहीं । 1

१२७. दिल का दरवाजा खटखटाकर आजादी आवाज दे रही है कि ऐ नादान ! जिसकी तुझे तलाश है. वह तेरे चारों तरफ है, जिसे कहते हैं आजादी । खातिर कर, ध्यान कर दीदार कर । बेहोश हो, खामोश हो, फरामोश हो ।

१२८. जहां हो वहीं रहो, जैसे हो वैसे ही रहो बस यही बोध है ।

१२९. बिना प्रयास के संकल्प शांत होने पर जो शेष रह जाय वही आजादी है। जिसमें- सभी को बरबादी है।

१३०. किसी प्रयास से संकल्प शांत करने की चेष्टा करना संकल्पों का बाजार बटोरना है।

१३१. संकल्प के शांत अशांत का विकल्प, जीवदेश का मेमोरियल हाल है ।

१३२. जितना अनुराग स्त्री में होता है उतना ही किसी संत में हो तो स्त्री भी भगवान ही दिखाई पड़े ।

१३३. क्षणिक सूख के लिए स्त्री की गुलामी पसंद है लेकिन संत की गुलामी में शर्म है।

१३४. प्रपंच से राग और भगवान से वैराग्यवालों का असत्य पर पूरा धिकार होता है ।

१३५. आत्म विस्मृति ही असत्य निष्ठा का चरम साधन है ।

१३६. जिस समय समाधि और चिन्तन के अहंभाव का अभाव हो जाय तब समझना कि यही समाधि, चिन्तन, आजादी या खुदा की सच्ची इबादत है ।

१३७. चराचर में जो अद्वितीयत्व वही स्वत्व है।

१३८. था, है, रहेगा ये तीनों कालवाचक क्रिया है । कालातीत देश में कर्ता, कर्म, क्रिया तीनों का अत्यन्ताभाव

है ।

१३९ जो विषय जैसा भासता है वैसा ही उसके समान दूसरा भी भासै तो विषय है, नहीं तो भगवान है ।

१४०. यदि विषय को विषय सिद्ध करता है तो विषय है, नहीं तो भगवान है ।

१४१. यदि विषय में विषय भासता है तो विषय है, नहीं तो भगवान है ।

१४२. विकल्प का विकल्प भी तो एक विकल्प है।

१४३. अध्यास की पृष्ठभूमि अधिष्ठान का अज्ञान है।

१४४. अध्यास का अहंभाव अभिमान है ।

१४५. आत्म में देहादिक का भान होना अध्यास है।

१४६. ज्ञान फायरे स्टिग्यूसर (Fierextinguisher) है ।

१४७. आत्मा को किसी भी विषय का विषय करने में अन्य उपकरण की अपेक्षा नहीं ।

१४८. आत्मा की स्मृति में किसी भी विषयमें जाता हुआ अथवा गया हुआ मन तत्काल बिना प्रयास ही आत्मा में लीन हो जाता है।

१४९. स्वत्व की पूर्ण अनुभूति में अध्यास का अत्यन्त प्रलय है ।

१५०. उत्पत्ति की अनुत्पत्ति में प्रलय का अत्यन्त प्रलय है।

१५१. जिस प्रकार विषय की अभिन्नता में ही विषय का विषय है इसी प्रकार परमात्मा की अभिन्नता में ही परमात्मा की अनुभूति है।

१५२. जब संसार का अनुभव संसार हो जाने पर होता है, तो परमात्मा का अनुभव उसके भिन्नता में कैसे होगा ।

१५३. जाग्रतकाल में, स्वप्न में यदि आस्था है तो वस्तुत: वह स्वप्न ही है ।

१५४. अविद्यमान वस्तु यदि दृश्यमान है तो उसके सतत चिन्तन का परिणाम है ।

१५५ विषय में मधुरता वैराग्य का अपमान हैं ।

१५६. वैराग्य का अपमान वीतराग के अनादर का प्रसाद है ।

१५७ सत्यासत्य का विवाद सत्ता की उपेक्षा में निहित है ।

१५८. सत्तापद निर्वचनीय है ।

१५९ प्रतीति, अप्रतीति दोनों की जो अप्रताति है, वही सत्ता है।

१६०. आकाश जिसका परिधान है, अनुभति जिसकी शय्या है, उसका ही नाम सत्ता है ।

१६१. अनुभव जिसका अनुभव है। । अनुभव का जो . अनुभव है। जान लिया तो अनुभव है जाना नहीं पराभव है।

१६२. गागर में भवसागर है, भवसागर ही मन गागर है । न गागर है न सागर है, बस एक मुक्त नटनागर है।

१६३. प्रतीति की जो प्रतीति है अप्रतीति की को अप्रतीति है, स्वयं न प्रतीति है. न अप्रतीति है । प्रतीति, अप्रतीति दोनों की संधि में जो स्थित है वही सत्ता है।

१६४. जो दिखता है- वह दिखता है। मैं दिखता हूं- तब दिखता है। इस रहस्य को जान लिया फिर दिखना कहां जो दिखता है।

१६५. अभ्यास न करने का अभ्यास करना यही ब्रह्माभ्यास है।

१६६. आत्म सम्मान खोकर कोई वस्तु प्राप्त होतो है, तो वह मृत्यु से बढ़कर है।

१६७. जिस प्रकार भगवान के समान दूसरा कोई नहीं, इसी प्रकार जो पदार्थ जैसा है, उसके समान दूसरा कोई नहीं, इसलिए कि वह भगवान है।

६८. मनोनाश के दो प्रकार है- अरुपनाश और सरुपनाश ।

१६९. सरुपनाश साधन साध्य है, अरुपनाश कृपा साध्य है ।

१७०. मोह दो प्रकार का है- मोह और महामोह ।

१७१. मोह का आधार अध्यास है : महामोह का आधार अधिष्ठान है।

१७२. अध्यास में जो भ्रम उसका नाम मोह है, अधिष्ठान में जो भ्रम उसका नाम महा मोह है।

१७३. आत्मा अधिष्ठान है, जगत अध्यास है ।

१७४. साधन का अस्तित्व अध्यास जगत में है, अधिष्ठान में नहीं ।

१७५. एक ही पहलू के दो नाम अध्यास कहो या विवर्त ।

१७६. अध्यास ४२० होता है । अधिष्ठान विश्वास पात्र होता है।

१७७. अधिष्ठान की अनुभूति ही विवर्त की मृत्यु है।

१७८. अधिष्ठान का अज्ञान ही विवर्त का जन्म है।

१७९. आत्मानुभूति नानात्व का अत्यन्त् प्रलय हैं।

१८०. जन्म का स्वागत मृत्यु का निमंत्रण है।

१८१. तत्ववेत्ता का आचरण वकीलों की बहस है।

१८२. किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व का अनुभव उसके कार्य पर अवलम्बित है।

१८३. पंचवर्षीय आयुवाला व्यक्ति, राजा बहादुर होता है, अतः उस पर विश्वास मत करो ।

१८४. मन रोको मत, जाने दो ।

१८५. रोकना है तो मन के रोकने को रोको ।

१८६. जाने देना है तो जाने देने को जाने दो ।

१८७. कामनारहित व्यक्त पर ऐहिक, पारलौकिक कहीं का भी विधान लागू नहीं होता ।

१८८. ब्रह्मवेत्ता सुप्रीम कोर्ट है, जिसका निर्णय भगवान को भी मान्य है।

१८९. ब्रह्मवेत्ता विश्व का सम्राट है, भगवान भ जिसकी प्रजा है।

१९०. ब्रह्मवेता निर्भय और निरंकुश इसलिए रहता है कि वह चाह पीता है।

१९१. अमन चैन चाहो तो कुछ भी न बनो ।

१९२. पीटना है तो अपने आपको कुछ भी मान लो।

१९३. किसी भी विषय से चित्त की उपरामता के दो कारण होते हैं। एक पूर्णता दूसरी अश्रद्‌धा ।

१९४. किसी भी देश, काल, वस्तु में धारणा, ध्यान तथा समाधि के लय का नाम संयम है ।

१९५. जीव देश का निवासी हमेशा ही धोखेबाज होता है, भगवान को भी नहीं छोड़ता ।

१९६. जीव जगत के निवासी का असत्य पर पूर्ण आधिपत्य होता है ।

१९७. आत्मनिष्ठा ही सच्ची आस्तिकता है।

१९८ जीव नगर का नागरिक उलूक होता है।

१९९ कर्म चार प्रकार के होते हैं-पुण्य कर्म, पाप कर्म, पुण्य-पाप मिक्षित कर्म और पुण्य-पाप रहित कर्म ।

२००. लज्जा, भय से रहित पुण्य कर्म है, लज्जा भय के सहित पाप कर्म है।

अपराधी को दण्ड देना पुण्य, संकोच भय के कारण दण्ड न देना पाप, दोनों से संयुक्त पुण्य-पाप मिश्रित कर्म है। पुण्य और पाप दोनों के विकल्पाभाव में जो कर्म किये जाये उन्हें पुण्य पाप रहित कर्म कहते हैं।

२०१. आत्मनैष्ठिक से ही पुण्य-पाप रहित कर्म होते हैं। बाकी को लद्‌दू घोड़े समझो ।

२०२. स्वभाव में कर्मों का विकल्प भाव है। पर भाव में कर्मों का भाव ही भाव है।

२०३. कर्मों का विकल्प कर्मों का भाव है। विकल्प का अभाव सर्व का स्वभाव है ।

२०४. मन, वचन, कर्म द्‌वारा किञ्चिन्मात्र भी चेष्टा सहज पद की उपेक्षा है।

२०५. सहज भाव ही भगवान की अटल भक्ति है।

२०६. ज्ञान, अज्ञान, वद्‌ध, मुक्त के भाव में सहज पद का अभाव है।

२०७. सहज पद के लिए साधन की अपेक्षा नहीं है।

२०८. सहज भाव में विधि-निषेध का अभाव है।

२०९. जो वस्तु मन, वाणी का विषय नहीं, उसके सतत चितन के लिए मन, वचन, कर्म के निरोध-अनिरोध की

अपेक्षा नहीं ।

२१०. सतत का ही सतत चितन हो सकता है अन्य का नहीं।

२११. किसी भी भाव-अभाव का विकल्प, उसका अभाव ही तूष्णी भाव है ।

२१२. तूष्णी भाव अयत्नतः नित्य प्रवाहशील है ।

२१३. बाह्य और अन्तर्जगत के स्वास्थ्य की स्वस्थता स्वस्थ पद के स्थिति में ही निहित है।

२१४. विकल्प का विकल्पक और विकल्प जब दोनों ही एक हैं तो विकल्प से खतरा क्यों ।

२१५. विकल्पक जगत में यदि विकल्प है तो विकल्प नहीं और विकल्प जगत में यदि विकल्प है तो भी विकल्प नहीं ।

२१६. अमनस्क पद की अनुभूति, अमनस्क होने का चरम साधन है।

२१७. स्व का भाव स्वभाव है ।

२१८. जिस प्रकार प्रकाश के देखनें का प्रकाश उपकरण है, उसी प्रकार स्वभाव के अनुभव का स्वाभाविक स्वभाव ही उपकरण है।

२१९. स्वभाव की अनुभूति स्वाभाविक है, अस्वाभाविक नहीं ।

२२०. स्व-भाव में स्थित होने का विकल्प स्वभाव पद का बाधक है।

२२१. साधनजन्य अमनी भाव नित्य नहीं वरन् क्षणिक है ।

२२२. अस्वाभाविक विकल्प, विकल्प है और स्वाभाविक स्वभाव है।

२२३. स्व-भाव के भाव-अभाव का अभाव स्वभाविक भाव है।

२२४. स्वत्व का स्व और अस्तित्व का भाव इसका ही नाम स्वभाव है।

२२५. अस्ति का जो अस्ति है, भाति का भाति है, प्रिय का प्रिय है, और जो अस्ति, भाति प्रिय है, इन सभी भावों के अभाव का नामः स्वभाव है ।

२२६. आनंद नैतिकजन्य हो अथवा अनैतिक, क्षणिक, साधनापेक्षित, कृत्रिम वृत्तिजन्य, अनित्य, विषयानंद

कहलाता है। और सतत आनंद, अकृत्रिम, साधन शून्य सामान्य, व्यापक, चेष्टारहित, सदैव सर्व को प्राप्त सहजानंद कहलाता है । सोई स्वस्वरुप अथवा स्वभाव है ।

२२७. भाव में भाव, अभाव में अभाव भाव का भाव, अभाव का अभाव, और भाव भी है अभाव भी है सोई सहज भाव है।

२२८. सहज स्थिति सहजावस्था अथवा सहज समाधि है। सो चराचर की बिना प्रयास ही निरंतर लगी रहती है।

२२९. योगी की समाधि मनोनिग्रह पर अवलम्बित है। उसी में सविकल्प निर्विकल्प का विकल्प है और सहजानन्दी की समाधि सविकल्प, निविकल्प, सबीज, निर्बीज, संप्रज्ञात, असंप्रज्ञात इत्यादि के अभाव में स्वतःसिद्ध है।

२३०. जिसका कोई अवलम्ब नहीं, जिसके लिए कोई अवलम्ब नहीं, किसी का जो अवलम्ब नहीं, प्राप्ति, अप्राप्ति का विकल्प रुप अवलम्ब नहीं, सोई निरालम्व पद है ।

२३१. स्वभाव का चिन्तन स्वाभाविक वैकल्पिक नहीं ।

२३२. अहं ब्रह्म का बोध तत्वमसि महावाक्य के श्रवण, मनन, निदिध्यासन का फल है और स्वभाव का बोध गुरुकृपा का फल है।

२३३. स्वभाव में स्वाभाविक निष्ठा होती है अन्य में वैकल्पिक ।

२३४. भगवान का वास्तविक और सतत स्मरण स्वभाव का ही हो सकता अन्य का नहीं।

२३५. किसी भी विषय का अर्थ न भासना यही स्वभाव स्थिति है। मन की स्थिरता चंचलता की उपेक्षा ही स्वभाव स्थिति है ।

२३६. वाह्य तथा अन्तर्जगत के किसी भी विषय के अनुभव करने में मन की अपेक्षा नहीं है।

२३७. पूजन, पाठ, ध्यान, धारणा ये सभी जीव- देश के कार्य हैं इसलिये इनमें मन का रोकना दुस्साध्य है।

२३८. अन्तरिक्ष यात्री बनो ।

२३९. जो अंतरिक्ष में रहता है वही अंतरिक्ष की यात्रा कर सकता है।

२४०. आत्मनिष्ठा अंतरिक्ष यान है। निर्विकल्पता अन्तरिक्ष है।

२४१.	सहजपद ही अन्तरिक्ष पद है, सहजानंदी अन्तरिक्ष यात्री है। अनुभूति कैमरा है। अनिर्वाच्यता रेडियो है, जहां पर 'में' के अतिरिक्त कुछ नहीं यही चित्र है।

२४२.	सारा प्रपंच अंतरिक्ष में है, अंतरिक्ष स्थित अनुभव करता है यही वहा का संदेश है।

२४३.	मन, वाणी रुप पृथ्वी से परे कल्पनातीत पद, यही अनन्त योजन दूरी है।

२४४.	प्रपंच के भाव, अभाव का विकल्प स्थाणु पद की उपेक्षा है।

२४५.	वहीं था, जहां था, वहीं हूं, जहां हूं, वहीं रहूंगा, जहां रहूंगा ।

२४६.	था, हूँ, रहूंगा, इनके भाव के अभाव का नाम स्थाणु पद है ।

२४७.	जो दिखता है वह माया है, जो देखता है वह ब्रहम है। दिखना, देखना दोनों भाव के विकल्प का अभाव स्थाणु पद है ।

२४८.	स्थाणु माने स्थाणु, अस्थाणु माने अस्थाणु दोनों विकल्प के अभाव के माने न स्थाणु न अस्थाणु, सोई अपना आप है।

२४९.	त्याग माने त्याग, ग्रहण माने ग्रहण, दोनों विकल्प का अभाव ही सन्यास है।

२५०.	समस्त चराचर रूपी गृह में स्थित आत्मा ही गृहस्थ है।

२५१.	वासना रूपी वनिता से दूर सहजावस्था रूपी तप में आरूढ़ होना ही वानप्रस्थ है ।

२५२.	मन की तृष्णा रूपी क्षुधाग्नि को शान्त करने के लिए कुछ भी चिंतन न करना, ऐसा ब्रहमचिंतन रूपी घास

चरना ही ब्रहमचर्य है।

२५३.	चारों आश्रमों के भाव के अभाव पद में स्थित, सोई अवधूत है।

२५४.	अन्तरिक्ष की खोज में बुद्धि का व्यायाम है, अन्तरिक्ष की खोजी में बुद्धि का विश्राम है ।

२५५.	साहित्य की उलझन में अक्ल की कसरत है। साहित्य के श्रोत में साहित्य से नफरत है।

२५६.	गर हकीकत में आशिक हो तो निर्विकल्प किले के भीतर सहजानंदी शाही तख्त पर माशूक बैठा है, नकाबे आसमान चीरकर शक्ले माशूक अंदर चले जाओ ।

२५७. माशूक की मुस्कराहट आशिक को माशूक बना देती है ।

२५८. आशिके माशूक हूं, एकतरफा मज़ा है, दीवाना हूं जिसका, वह दीवाना है मेरा ।

२५९. नजरे माशूक आशिके वतन खत्म कर देती है।

२६०. सच्ची ईमानदारी और शराफत इसी में है कि तुम कुछ भी न बनो क्योंकि कुछ बनना, दूसरे मुल्क पर हमला है।

२६१. काबिले तारीफ है साकी, ऐसा पिलाया जाम, अपने पराये का होश ही नहीं ।

२६२. आत्मचिंतन कठिन नहीं है, बल्कि "आत्म चिंतन कठिन है" इस विकल्प का अभाव होना कठिन है।

२६३. सरलता कठिनता का विकल्प चिंतनीय वस्तु में होता है अचिन्त्य में नहीं ।

२६४. प्रत्येक विषय का अनुभव करने के लिए यदि मन उपकरण है तो सर्व का सर्वकाल - में मन स्थिर है। हा यह भाव स्थिर, नहीं अस्थिर है ।

२६५. अनिर्वचनीय भगवान में निराकार साकार का विकल्प जीव देश का है, भगवान देश का नहीं ।

२६६. भगवान जगत का सृष्टि, पालन तथा संहार कर्ता है, इस प्रकार का विकल्प भगवद्विषयक मोह है। विश्वास न हो तो भगवान होकर देखो ।

२६७. मन के रोकने का प्रयास मन के रोकने में बाधक है।

२६८. मन के रोकने का प्रयास मन के अस्तित्व का पोषक है।

२६९. जीव भाव में मन का अभाव यदि सत्य है तो सत्यभाव का अभाव होना भी सत्य है ।

२७०. धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों वासन का अभाव, स्वभाव के भाव में निहित है।

२७१. आत्मचिंतन का विकल्प, आत्मचिंतन विकल्प का आधार है।

२७२. सिद्धियों की सिद्धि, सिद्धकर्ता का पर्याय है।

२७३ विकल्पक में ही विकल्प होता है, अन्य में नहीं ।

२७४. विकल्पक का ही पर्याय विकल्प है।

२७५. जिसका विकल्प होता है वही दिखता है।

२७६. जो विकल्प करता है वही दिखता है।

२७७. विकल्पक की हस्ती में विकल्प की नेस्तिहै। विकल्पक की नेस्ति में विकल्प की हस्ती है।

२७८. मन का निरोध, एकाग्र, स्थिर और लय, मन के अस्तित्व में निहित है ।

२७९. जहां अरे है वहीं अटक है।

२८०. जहां अटक है वहीं खटक है।

२८१. जहां खटक है वहीं भटक है ।

२८२. जहां भटक है वहीं लटक है।

२८३. यह संसार पतंग जैसी लूट है, अंत में फटी झिल्ली के अतिरिक्त और कुछ न मिलेगा ।

२८४ दिखने वाला नहीं दिखता, देखने वाला दिखता है।

२८५. देखने वाले के देखने पर ही दिखने को दिखता है, अन्यथा नहीं ।

२८६. जिसका विकल्प होता है, वही दिखता है ।

२८७. जो विकल्प करता है, वही दिखता है ।

२८८. प्रपंच का अत्यन्ताभाव, अमनी भाव में निहित है।

२८९. किसी भी देश, काल, वस्तु की सत्ता मानना ही अध्यास है।

२९०. अध्यास का त्याग ही ब्राहमीनिष्ठा है।

२९१. अभ्यास का आनंद चाहो तो, अभ्यास के अध्यास का त्याग करो ।

२९२. बाह्य अथवा अन्तर्जगत का जो चेष्टा रहित आनंद है, सोई सहजानंद है ।

२९३. अहँ ब्रह्मास्मि स्वप्न की बंदूक है। जीवा- ध्यास शेर है ।

२९४. स्वरूपस्थ होना जागृत है ।

२९५. कायिक, वाचिक, मानसिक चेष्टा की उपेक्षा स्वभावानुभूति है।

२९६. साहित्य जगत में अनुभव की उपेक्षा है। अनुभव जगत में साहित्य की उपेक्षा है और स्वरूपस्थ जगत में दोनों की उपेक्षा है।

२९७. बुद्धि की चंचलता साहित्य का विस्तार है। बुद्धि की स्थिरता अनुभव का आधार है।

२९८. सत्-उत्तम अधिकारी, अनुभव चाहता है।

२९९. रज-मध्यम अधिकारी, साधन चाहता

३००. तम-कनिष्ठ अधिकारी, साहित्य चा है।

३०१. बेवकूफी किसी खास की जागीर नहीं है । यह दुनियां कैसी दुरंगी है कि जो है उसको नहीं देखती है और जो नहीं है उस है देखती है।

३०२. फ्री जमाने की कैसी खूबी है कि आजकलकी छोटी-छोटी कुंवारी लड़कियां भी ससुराल का लेक्चर देने में फूली नहीं समाती ।

इसी प्रकार 'मैं' आत्मा खसम से ख्वाब में भी मुलाकात नहीं और बाहरी दुनिया में सिद्ध बनकर वेदान्त कथन करते है ।

याद रखो, जिस समय तुम्हें दीद ('में' आत्मा) का दीदार होगा उस वख्त तुम्हारे दिल दिमाग हमेशा के लिए गायब हो जायेंगे । वस, दीद ही दीद रह जायेगा ।

३०३. स्वरूप विस्मृति ही माया है।

३०४. अरे, का सदा के लिए अभाव ही आत्मा का सतत चिंतन है ।

३०५. निर्विकल्पता के लिए विकल्प निर्विकल्पता का बाधक है।

३०६. विकल्प नाश के विकल्प में विकल्प का विकास है।

३०७. आत्मकल्याण की भावना साधन के प्रमाद का नाशक है ।

३०८. साधन के प्रति बेपरवाही प्रमादका स्वरूप है।

३०९. मन की चंचलता और स्थिरता का प्रभाव नित्य है और यह नित्यपना में आत्मा का है मन का नहीं। चंचलता स्थिरता दोनों भावों का अभाव ही स्वरूप है (स्वरूप स्थिति)

३१०. मैं को मैं न जानकर मैं को कुछ भी मान लेना ही मन है ।।

३११. मन, प्राण, वासना इनका निरोध न करना ही निरोध का निरोध है।

३१२. चंचलता स्थिरता दोनों विकल्पों का जो अभाव है उसका नाम परमसमाधि है।

३१३. 'मैं' के अतिरिक्त कुछ नहीं यह परम समाधि का साधन है।

३१४. चित्त के स्थिर भाव चंचल भाव में हर्ष शोक न होना परम समाधि का स्वरूप है।

३१५. चित्त की समाधि परिच्छिन्न है, परम समाधि व्यापक है। इसका निश्चय करना ही स्वभाव में टिकना है।

३१६. इसका फल ब्राह्मीस्थिति है और भगवान का सर्वकाल में भजन है।

३१७. किसी विषय के अनुभव के लिए उपकरण की आवश्यकता नहीं है, उस विषय को व्यक्त करने के लिए उपकरण की आवश्यकता है।

३१८. पदार्थ का अनुभव होता है अर्थ की अभिव्यक्ति होती है।

३१९. विकल्प के बिना जो अनुभव होता है, वो पदार्थ है।

३२०. वस्तु के अभाव का नाम विकल्प है।

३२१. मैं को कुछ भी मान लेना मन है।

३२२. मैंने यह किया, माया है।

३२३. शरीर देश में शरीर मिथ्या है, आत्मा देश में शरीर असत्य है।

३२४. दिखनेवाला भाव, देखनेवाला स्व। दिखने वाली सीता देखने वाला राम।

३२५. जो जगत को भी न जाने, न आत्मा को जाने, उसे विकर्म कहते हैं।

३२६. मैं देखने की इच्छा करता हूं तो सृष्टि हो जाती है, । जब तक देखता रहता हूं ततब तक पालन है। जून देखना बंद कर देता हूँ वही संहार है।

३२७. ज्ञान से अज्ञान का नाश होता है, विज्ञान से प्रपंच (नाम, रूप) का नाश होता है। गुह्यतम से आवागमन के चक्र का नाश होता है ।

३२८. गुह्य-जो कान में इशारे से कहा जाय । गुह्यतर-बुद्धि से कहा जाय । गुह्यतम- बुद्धि से परे कहा जाय ।

३२९. अमानीपद वालक, न अपना अस्तित्व मानता है, न संरक्षक का ।

३३०. जिसको जो सिद्ध करता है, वहीं उसकी सरकार है।

३३१. मैं के साथ हमेशा जानना लगाया जाता है। और (देह, जीव, ब्रह्म) के साथ हमेशा मानना लगाया जाता है।

३३२. विरक्त के लिए समाधि का अभ्यास अथवा प्रखर वैराग्य दोनों से जीवन्मुक्ति का लाभ है।

३३३. गृहस्थ में जीवन्मुक्ति का आनंद अपवाद है, सिद्धान्त नहीं ।

३३४. आत्मसमर्पण का स्वरूप, मैं क्या हूं इस भाव का अभाव है ।

३३५. आत्मसमर्पण करने के पश्चात कृपा का कोई प्रश्न ही नहीं उठता ।

३३६. आत्मसमर्पण का फल ही कृपास्वरुप है। आत्मसमर्पण सब गृहस्थ के लिए सुलभ नहीं ।

३३७. वस्तु और उसके देने वाले के प्रति जो आसक्ति उसका नाम राग है। उपरोक्त के प्रति घृणा का ही नाम द्वेष है।

३३८. मन के आने जाने का अनुभव करना पदार्थ है। भगवान है ।

३३९. विकल्प करना अर्थ है, संसार है।

३४०. 'है' इस सम्राट पद में स्थित होते ही ७वीं तुर्यगा भूमिका आ जाती है ।

३४१. जाग्रत काल में स्वप्न में यदि आस्था है, तो वस्तुतः वह स्वप्न ही है।

३४२. अविद्यमान वस्तु यदि दृश्यमान है तो उसके सतत चिंतन का परिणाम है।

३४३. बह्याध्यास के अभाव में शून्यवाद निहित है और शून्यवाद कृपा की उपेक्षा का परिणाम है।

३४४. साक्षी भाव वाममार्ग का श्रोत है, वाममार ज्ञान के प्रमाद का परिणाम है ।

३४५. जीव के गमनागमन का अभाव तथा कुछ में हूं, प्रमादी के लिए नास्तिकवाद का उपादान है ।

३४६. प्रमाद ज्ञान अभिमान की छाया है।

३४७. ज्ञान का साधक साधनकाल में जो भी साधन करता है, उसके संस्कार बोध होने पर भी नहीं जाते ।

३४८. शून्य स्थान में बालक को बेताल (पिसाच) भासता है, वैसे ही 'अहमब्रह्मास्मी' के अभाव में प्रमादी को शून्यवाद (क्षणिक विज्ञान- वाद) भासता है ।

३४९. यहां कुछ है कि नहीं, इस विकल्प का ही नाम स्याद्वाद (जैन सिद्धान्त है)।

३५०. भगवान जानता है इसलिए जानने की चीज है।

३५१. स्मरण का विकल्प न करना ही सर्वकाल में स्मरण है।

३५२ चरित्र देखा जाता है, लीला सुनी जाती. है।

३५३. दिखने वाला चरित्र है, दिखनेवाले में विकल्प होता है वह लीला है ।

३५४. शिष्यत्व की प्राप्ति नारायण भाव में निहित है। बोध होना सरल है परन्तु शिष्यत्व स्वीकार करना दुर्गम है।

३५५. गुरु ही शिष्य रुप में दिखता है गुरु की सम्पूर्ण शक्ति शिष्य में प्रविष्ट हो जाता है।

३५६. चित्त का समाधान शिष्यत्व भाव में निहित है।

३५७. जो कुछ कहा जाय, वह 'मैं" नहीं हूँ ।

३५८. वही मैं हूं, यही भगवान का गुणगान है, यही भगवान की महिमा है ।

३५९. 'मैं' इसलिए जानने की चीज है क्योंकि सबको जानता है ।

३६०. 'मैं' को कुछ मानना यही भगवान पर कलङ्क है।

३६१. 'मैं' को देह मानना देह का स्वरुप ।
'मैं' को जीव मानना – जीव का स्वरुप ।
'मैं' को ब्रह्म मानना – ब्रह्म का स्वरुप ।

३६२. यह जगती है तथा उसके रुप की कल्पना करना यही जगत है ।

३६३. किसी भी देश, काल, वस्तु को अर्थहीन कर देने पर भगवान हो जाता है।

३६४. संसार में प्रत्येक कार्य में 'में' 'मैं' रहता हूँ इसलिए मन के आने जाने में हर्ष शोक नहीं होता और पूजन, पाठ, ध्यान, धारणा में जीव हो जाता हूं इसिलए मन काबू से बाहर हो जाता है।

२६५. पुण्य, पाप और कर्ता इन तीनों के अस्तित्व का जो अभाव यही पुण्य पाप रहित कर्मो का भाव है।

२६६. कर्मो का अर्थ ही पुण्य, पाप है।

३६७. अपने आपको कुछ भी मानना ही मन की उत्पत्ति है।

३६८. मन को रोकने में चंचलता निहित है और न रोकने में स्थिरता निहित है ।

३६९. मन को रोकने में जीव भाव निहित है और न रोकने में 'मैं' भाव निहित है।

३७०. जो न होय और दिखाई पड़े यही भगवान का चरित्र है और न होते हुए जो दिखाई पड़ता है यह भगवान की लीला है।

३७१. चित्त कहता है कि मैं चित्त हूं इसलिए मैं चित्त हूं ।

३७२. 'मैं' से भिन्न अगर चित्त है तो चित्त नहीं

३७३. लोक लोकान्तरों का गमनागमन भावना पर अवलम्बित है ।

३७४. जानने के लिए 'में' और टिकने के लिए 'है'।

३७५. चराचर प्रजा है। 'है' गवर्नमेन्ट है और 'मैं' प्रधानमंत्री है।

३७६. दूसरे का भोग वही भोग सकता है जिसको दृष्टि में दूसरा नहीं है।

३७७. अध्यास असत्य है उसका विकल्प मिथ्या है।

३७८. सर्व स्थान से सर्व को जानना, इसका नाम ज्ञान है और एक स्थान से सर्व को जानना, इसका नाम योग है।

३७९. नहीं होकर जो दिखता है, वह माया है और दिखने वाले को जो देखता है वह 'मैं' हूं।

३८०. एक रस स्थिति नहीं रहती इस विकल्प के अभाव का ही नाम एक रस स्थिति है और इसी स्थिति को स्वाभाविक स्थिति कहते हैं ।

३८१. अस्वाभाविक स्थिति या कृत्रिम स्थिति चित्त की होती है और स्वाभाविक स्थिति आत्मा की होती है।

३८२. भाव के अभाव में भासता स्वभाव है।

३८३. कृत्रिम स्थिति योग का फल है । स्वाभाविक स्थिति ज्ञान का फल है।

३८४. मैं ब्रह्म हूं, यह ज्ञान है। इस अध्यास के अभाव का जो भाव है उसका नाम भक्ति है।

३८५. मैं हूं, इस भाव में मन तुम्हारे वश में हो जाता है और मैं जीव हूँ इस भाव में मन के वश में तुम हो जाते हो ।

३८६. विकल्प रहित कर्म को पुण्य, पाप रहित कर्म कहते हैं।

३८७. 'मैं' को कुछ भी मान लेना यही कलई है और 'मैं' को 'मैं' ही जानना यही कदर है।

३८८. अपने आप 'मैं'' को कुछ भी मानना आत्म विषयक मोह है और यही आत्मा पर कलंक लगाना है।

३८९. वह 'मैं' हूं, इस विकल्प के अभाव का नाम नित्ययुक्त है।

३९०. अर्थ रहित जो कर्म होते हैं उन कर्मों का नाम पुण्य-पाप रहित कर्म है।

३९१. मैं' को कुछ भी मानना ही आत्मनिष्ठ का प्रमाद है ।

३९२. संसार का विकल्प ही संसार की मजबूत जड है।

३९३. संसार के प्रत्येक विषय के अनुभवकाल में जैसा में हूं, वही रहता हूं।

३९४. में पहले जीव था, अब ब्रह्म हुआ, यह ज्ञान अज्ञान है और न में पहले जीव था, न अब ब्रह्म हुआ, यह भगवान का ज्ञान है।

३९५. 'मैं' हूँ ऐसा जानना ही 'मैं' का जानना है ।

३९६. नाम का अर्थ, रुप का विकल्प यही संसार है ।

३९७. आत्मा का अर्थ अस्तित्व और परमात्मा का अर्थ अभिन्न ।

३९८. मन रोकने से नहीं रुकता, न रोकने से रुकता है।

३९९. मन को स्थिर करना है तो मत रोको, मन को चंचल करना है तो रोको ।

४००. पदार्थ भगवान है, अर्थ संसार है।

४०१. अर्थ से भय है, पदार्थ से नहीं ।

४०२. मन अर्थ में जाता है, पदार्थ में नहीं ।

४०३. साहित्य उसे कहते है जो याद करके भूल जाय ।।

४०४. वेदान्त उसे कहते है जिसे सुनकर डूब जाय ।

४०५. हठयोग से प्राण का निरोध, राजयोग से मन का निरोध, ज्ञान योग से वासना का निरोध, भक्तियोग से निरोध का निरोध ।

४०६. मन का प्रेम ब्रह्म से है, न कि विषय से क्योंकि दोनों एक ही नपुंसकलिंग है। ब्रह्म के समान मन भी अक्रिय है। मन में जो क्रियाशीलता भासती है, यह मन का स्वभाव है ।

४०७. क्रिया काल्पनिक होती है, स्वभाव वास्तविक होता है।

४०८. न मन चंचल है, न स्थिर है। चंचलता का विकल्प चंचलता है, स्थिरता का विकल्प स्थिरता है।

४०९. निर्भीकता त्याग में निहित है।

४१०. मन द्वारा रचित भगवान का भजन मन की एकाग्रता पर निर्भर है ।

४११. मन से परे जो भगवान उसके भजन के लिए एकाग्रता की अपेक्षा नहीं है ।

४१२. जब 'मैं' कुछ बनता हूं, तब मन बनता है। जब 'मैं' कुछ नहीं बनता तब मन भी नही बनता । अतः कुछ भी न बनो।

४१३. अमानी रहना ही परम समाधि है। यही सहजावस्था और भगवान से सहज स्नेह है।

४१४. स्थूल दृष्टि वालों के लिए जिस प्रकार स्थूल जगत बाधक है उसी प्रकार सूक्ष्म दृष्टि वालों के लिए आकाश बाधक है।

४१५. निर्गुण, सगुण का भेद मिट जाने पर ही भगवान में सहज सनेह होता है ।

४१६. जो है वह राम है, जो नहीं है वह चरित है। जो न होते हुए भासता है वही लीला है।

४१७. मैं क्या हूं इसको भूला है, मैं हूं इसको नहीं भूला है।

४१८. बेफिक्री का अभ्यास करो ।

४१९. मन भगवान आत्मा का संकल्प है, इसे जीव भाव में कैसे रोक सकते हो । आत्मा भाव में ही स्थिर होता है ।

४२०. आत्मभाव में प्राणिमात्र स्थित है । अपने आप को कुछ मानते ही आत्मभाव से पतन हो जाता है । कोई किसी भी क्षेत्र में प्रगति करता है तो आत्मभाव में ही करता है ।

४२१. जब किसी का पतन होता है तो कुछ बनने पर ही होता है । अत: कुछ न बनों ।

४२२. पुर को अप्रतीति ही पुरुष का बोध है।

४२३. पुरुष का बोध ही अस्तित्व में टिकना है अस्तित्व में टिकने का विकल्पा भाव ही अस्तित्व की अनुभूति है।

४२४. अनादि के अस्तित्व में प्रपंच का अजातवाद निहित है ।

४२५. चरित्र के अस्तित्व में ही चरित्रभ्रम निहित है ।

४२६. अपने में को कुछ न मानना ही प्रमाद से रक्षा है ।

४२७. सारा संसार प्राणिमात्र जड़, चेतन सहजावस्था में स्थित है, इस स्थिति में, इस निश्चय में, इस बोध में निरन्तर रहना

ही कृपा का स्वरूप है।

४२८. जो है वह राम है, जो नहीं है वही सीता

४२९. स्वाभाविक मन एकाग्र होने पर नारायण भाव रहता है और कृत्रिम साधन द्वारा मन एकाग्र होने से जीवभाव रहता है।

४३०. काल्पनिक अभ्यास में न बैठकर स्वाभाविक अभ्यास में बैठो।

४३१ लोकेषण से बचो। यह विकार चिताओं का घर एवं सन्मार्ग का बाधक है।

४३२. स्वरूपस्थ पुरुष का कुछ मी न करन। हो सब कुछ करना है।

४३३. देह के अस्तित्व में प्रारब्ध का अस्तित्व है। प्रारब्ध कर्म मानने तक अज्ञान का अस्तित्व है।

४३४. प्रपंच दृष्टि से प्रपंच का अस्तित्व है, आत्मर्दाष्ट से प्रपंच का अस्तित्व नहीं।

४३५. संचित, प्रारब्ध, क्रियमाण कर्म थे ही नहीं, न इनका नाश कभी हुया. इस प्रकार के अनुभव का ही नाम समस्त कर्मों का नाश है।

४३६. अज्ञानी को ज्ञानोपदेश करना शिक्षा नहीं बल्कि सनातन ब्रह्म की स्तुति है।

४३७. जिसको संसार कहते हैं, वह 'मैं' ही तो हैं। जिसको मैं कहते हैं वह मैं ही तो हूं। इस भाव का नाम अनिर्वाच्य पद है।

४३८ रखो क्या जो रखा न जा सके, देखो क्या जो देखा न जा सके।

४३९ मन को न रोकना ही मन को रोकने का साधन है।

४४०. मन को मन न मानना ही मन की स्थिरता का साधन है।

४४१. मन की याद न करना ही मन के निरोध का साधन है।

४४२. स्वस्वरूप में स्थित हो जाना ही मन के लय का साधन है।

४४३. विधि वाक्य और निषेध वाक्य दोनों के अभाव का जो भाव है, वही स्वरूप स्थिति है। निषेध वाक्य प्रपंचाध्यास का नाशक है और विधि वाक्य प्रपंच के अस्तित्व का नाशक है। विधि-निषेध दोनों वाक्यों का अभाव विधि-निषेध का नाशक है।

४४४. मन साधन में स्थिर नहीं होता, साध्य में होता है।

४४५. मन, वचन के द्वारा जितने कर्म होते हैं, वे साधन है। इनका फल साध्य है। साधन काल्पनिक होता है, साध्य वास्तविक होता है।

४४६. समस्त साधनों की परिसमाप्ति जहां होती है वही स्वरूप आत्मानंद है।

४४७. यह मन क्षणिक आनंद में निरोध और एकाग्र होता है, नित्यानंद में स्थिर और लय होता है।

४४८. जिस ज्ञान से अज्ञान का नाश होता है उसे कृत्रिम, विशेष, साधन जन्य अथवा क्षणिक ज्ञान, अनित्य ज्ञान कहते है। जिस ज्ञान से अज्ञान का ज्ञान होता है, उस ज्ञान को स्वाभाविक, अकृत्रिम, वास्तविक, सामान्य व्यापक अथवा नित्यज्ञान करते हैं।

४४९. स्वाभाविक संकल्प स्वभाव है, अस्वाभाविक संकल्प संकल्प है।

४५० अस्वाभाविक संकल्प से वर्जित होना है, स्वाभाविक संकल्प से नहीं । स्वाभाविक संकल्प निःसंकल्प है।

४५१. अस्वाभाविक संकल्प संकल्प है। यही काम संकल्प है।

४५२ स्वाभाविक कर्म अकर्म है, अस्वाभाविक कर्म कर्म है।

४५३. भगवान का स्मरण मन से नहीं होता ।

४५४. विक्षेप रोकने का अभ्यास न करो, विक्षेप न रोकने का अभ्यास करो ।

४५५. विक्षेप है, इसका अभ्यास न करो, विक्षेप है ही नहीं, इसका अभ्यास करो।

४५६. मन और बुद्धि के तरफ जो नहीं देखता वही भगवान है।

४५७. शब्दादि विषयों के अनुभवकाल में स्वाभाविक अनुभव का अनुभव इसलिये नहीं होता कि उस अवस्था में आत्मभाव रहता है।

४५८. आत्मदेश में अनुभव की चीज, अनुभव- कर्ता, अनुमूति तीनों नहीं रहते । उस अवत्था में मन नहीं रहता ।

४५९. बन बना कर बैठना चित्त का चितन है। न बन बनाकर बैठना चित का चिंतन है।

४६०. अहंकार युक्त जो कर्म किया जाता है, उसी की स्मृति रहती है।

४६१. बिना बोध के कर्म, उपासना करना राख में आहुति डालना है।

४६२. बहिरंग जगत में उसी विषय की स्मृति होती है जिस विषय का अस्तित्व हृदय में में होता है।

४६३. कर्तृत्वाभिमान ही योग माया है। अपने को कुछ भी मानना यही भगवान को योगमाया से आवृत करना है ।

४६४. स्वरूपस्थ भाव में अनुभव के भाव, अभाव का भी अभाव है।

४६५. स्वभाव में आकाश तत्व स्वभाव का विवर्त है।

४६६ . आत्मदेश से अपने को पूर्ण मानो, व्यवहारिक दृष्टि से अपने को हमेशा अपूर्ण मानो । जहां भी गुण मिले ग्रहण करो।

४६७. व्यक्तित्व की उपेक्षा व्यक्तित्व के ग्रुपने की कंदरा है।

४६८. विधि-निषेध का अभाव सर्वकाल का शकुन है।

४६९. स्वभावस्थ होना ही fविधि-निशेध का अभाव है ।

४७०. स्वाभाविक संकल्प स्वभाव स्वरुप होने से सत्य होता है ।

४७१. व्यक्तित्व की रक्षा में कर्तव्य पालन नहीं होता ।

४७२. कर्तव्य पालन में विश्राम नहीं होता ।

४७३. व्यक्तित्व रक्षा की अपेक्षा कर्तव्य पालन महान है।

४७४. कर्तव्य का पालन व्यक्तित्व का रक्षक है।

४७५. मन, वचन, कर्म इन तीनों से अविरोध कार्य व्यक्ति का कर्त्तव्य है ।

४७६. कर्तव्य पालन की उपेक्षा मानवता का पतन है।

४७७. मानसिक कमजोरी का मनोवैज्ञानिक टानिक आत्मज्ञान है।

४७८. विद्वान साहित्य समझता है, श्रद्धालु आत्मा समझता है।

४७९. मन का प्रेरक कौन? अपने आपको जो कुछ नही मानता ।

४८०. अज्ञानी का वेदान्त अनेकता को लेकर है, ज्ञानी का भगवान को लेकर है।

४८१. सार्वभौम सिद्धांत में अद्वैत का भी अभाव है। इस रहस्य को वही समझेगा जिसने समझा है।

४८२. इस रहस्य को वही समझेगा, जो सबकी समझ है।

४८३. जो सबकी समझ है, उसी ने समझा है जिसने समझा है वहीं समझेगा ।

४८४. स्वभावस्थ पुरुष का विक्षेप भी स्वभाव है।

४८५. आत्मचिंतन स्वभाव नहीं है, परभाव है। इसलिए विक्षप से विक्षेप होता है ।

४८६. स्वरूप विस्मृति ही माया है।

४८७. अरे । का सदा के लिए अभाव ही आत्मा का सतत चिंतन है।

४८८. निविर्कल्पता के लिए विकल्प निविर्कल्पता का वाधक है।

४८९. विकल्प नाश के विकल्प में विकल्प का विकास है।

४९०. प्रश्न- मन चंचल है भजन नहीं होता।

उत्तर- भजन से और मन की चंचलता से क्या संबंध है। भजन अपनी जगह है चंचलता अपनी जगह है।

४९१. राग-द्वेष रहित जो हृदय है वही विरक्त है।

४९२. जो भगवान का भजन करता है वह ज्ञानी जिसका भजन भगवान करता है वह भवत ।

४९३. स्थिति और अस्थित दोनों की उपेक्षा करना एकरस स्थिति का परम साधन है

४९४. ज्ञानी देखने वाले में विचरता है, अज्ञानी दिखनेवाले में विचरता है। जो समझता हूं,कहता है, वह कुछ नहीं समझा, जो कहता है कुछ नहीं समझा, वही समझा है।

४९५. नहीं को देखना चाहो तो दूर से देखो, है को देखना चाहो तो नजदीक से देखो ।

४९६. तुम्हें यदि बोध हुआ है तो तुम्हारे पास कुछ है नहीं जिसे तुम दो यदि देने की इच्छा कर रहे हो तो अभी बोध नहीं हुआ ।

४९७. वेदान्त वास्तविक भेद का विरोधी है, काल्पनिक भेद का नहीं । जहां जानहै वहीं खड़ा है, जिसको देखना है उसे ही देख रहा है।

४९८. निरोध विचार से, एकाग्रता चितन से,स्थिरता अनुभव से, लय समाधि से ।

४९९. सत्य भगवान सीमा रहित इतना नजदीक है कि में हूं। असत्य संसार सीमा रहित इतनी दूर है कि तीनकाल में है ही नहीं ।

५००. पूजन, पाठ, ध्यान धारणा में बिना साधन के स्वाभाविक मन को स्थिर करना चाहो तो पूजन, पाठ, को पंच विषयो से भिन्न मत जानो ।

५०१. सहज समाधि के अतिरिक्त प्रत्येक समाधि काल्पनिक कृत्रिम और क्षणिक है।

५०२. संसार के समस्त विषयों का अनुभव बिना प्रयास स्वाभाविक सहज समाधि में नित्य होता है ।

५०३. स्वरुप स्थिति ही सहज समाधि है।

५०४. किञ्चन्मात्र भी चेष्टा न करना ही स्वरूप स्थिति है। चेष्टा की कल्पना का नाम ही चेष्टा है और कल्पना ही कल्पना

है। वस्तुतः स्वरूप है। ऐसी स्थिति का नाम आत्मा में मन का प्रवेश है।

५०५. मैं को जानना है ऐसी कल्पना का नाम मैं का अज्ञान है और इस कल्पना के नाश का नाम 'मैं' का ज्ञान है।

५०६. सहजावस्था में कत्तृत्वाभिमान नहीं रहता स्वाभाविक अज्ञानकाल से भी बढ़कर कार्य, संकल्प देखना, सुनना होता है। अभिमान रहित कार्य करने में थकावट नहीं आती।

५०७. संसार में रोग एक है-जगत को सत्य मानना और दवा भी एक है- परमात्मा को सत्य मानकर टिक जाना ।

५०८. भगवान और गुरु को अपना मन ही देना चाहिये क्योंकि मन के सिवाय अपना कुछ है भी नहीं, स्त्री पुत्रादि अपने नहीं है। अपने आप में जो अनेक नाम रूपात्मक जगत दिखाई देता है, वही विराट् ब्रहम है।

५०९. अपने से भिन्न जगत को न देखना, यही विराट बहम का दर्शन है ।

५१०. प्राच्य वेदान्त किसी का खंडन नहीं करता ।

५११. नव्य वेदान्त शुष्क होता है, केवल वाचिक ज्ञान है, सबका खंडन करता है।

५१२. विद्वान समाज में विद्वत्ता का महत्व है, संत समाज में आत्मानुभव का महत्व है।

५१३. बोध होने पर अपने वनाये हुए भीतर के संसार का नाश होता है, बाहर का नहीं।

५१४. मन जीतने की चीज नहीं है, मन के जीतने के विकल्प के पीछे शत्रुता खड़ी है। जब मन को शत्रु मानते हो तभी जीतने का प्रश्न होता है ।

५१५. मन से मेल करा । मेल करने का क्या स्वरूप है- अपने आपसे मन को अलग न मानना । जब मन भगवान से अलग नहीं है तो जीतोगे किसको ।

५१६. ब्राहमीनिष्ठा का स्वरूप ऐसा नहीं-खाने पीने ऐशो आराम में तो -मैं' बहम हूं और संकटकाल में 'मैं' जीव हूं। चाहे इन्द्रासन में बैठो तब में ब्रहम हूं, चाहे विपत्ति का पहाड़ टूटे तव भी मैं ब्रहम हूं।

५१७. भगवान को अपना मन देना चाहिए और गुरू को अपने आपको देना चाहिए। शिष्य ने अपने आपको जब दे दिया तो जीवभाव गया। गुरु ने अपने आपको शिष्य को दे दिया तो ब्रहम भाव गया, रहा एक चेतन का चेतन ।

५१८. यदि तुम जीव-ब्रहम, ईश्वर-जगत को दो मानकर संतुष्ट हो, तुम्हारा चित्त संतुष्ट है तो मानो, कोई आपत्ति नहीं। यदि

भीतर धुकधुकाहट है तो तुम्हारा जीव- ब्रहम, ईश्वर-जगत दो मानना पाखंड है।

५९९. नाम से सालोक्य मुक्ति. रूप से सारुप्य मुक्ति, गुण से सामीप्य मुक्ति, ध्यान से सायुज्य मुक्ति और ज्ञान से सद्योमुक्ति मिलती है ।

५२०. वास्तविक शिक्षा का आदर्श यह है कि हम अन्दर से कितनी विद्या बाहर निकाल सकते हैं, यह नहीं कि बाहर से अंदर कितनी डाल चुके हैं ।

५२१. किसी भी विषय के अनुभवकाल में मन रहता ही नहीं। यदि संसार के अनुभव- काल में मन रहेगा तो उसी तरह अड़चन होगी, जिस तरह पूजा, पाठ के समय होती है।

५२२. निरोध, एकाग्रता, लय जीवभाव में होता है। स्थिरता आत्मभाव में होता है. जीव- भाव में नहीं जो प्राणिमात्र का हमेशा है ही।

५२३ . सारा चराचर विना प्रयास के ही समा- धिस्थ है, यह अनुभव, में विना प्रयास के समाधिस्थ हूं इसमें निहित है।

५२४. त्रयमेकत्र संयमः- ध्यान, धारणा, समाधि। किसी पर संयम करने से तद्रुपता आ जाती है। फिर वही बोलता है। कृष्ण स्थिति में (अपने आप में) स्थित हो जाओ, गीता निकलने लगेगी ।

५२५. आत्मा उसे कहते हैं जो किसी से दूर न हो, जिससे कोई और प्रिय न हो ।

५२६. भगवान का सर्वकालीन स्मरण वही है जो मन के भाव में भी हो और ही अभाव में भी हो। जब मन का स्वभाव ही चंचलता है तब (निग्रहः किं करिष्यति)

५२७. व्यक्तिगत खुदी, सार्वभौम खुदा ।

५३३. शरोर स्वप्न है और शरीर पर जो विकल्प यही स्वप्नान्तर है ।

५२८. कारण से हो, वह विकार है । बिना कारण से जो हो वह स्वभाव है।

५२९. चंचलत्व, स्थिरत्व मन का स्वभाव है। चंचलत्व, स्थिरत्व से होने वाली कल्पना का नाम विकार है।

५३०. मोक्षेच्छा भी विकार है। सगुणोपासक मोक्ष, न लेही ।

५३१. यह आकाश है ऐसी कल्पना का नाम दाग है अथवा धूमिल होना है।

५३२. (मैं अरू मोरि तोरि ते माया) में ऊपर का ढक्कन, मेरा नीचे का ढक्कन चेतन का का जोड़ योगमाया । जो कहता है मैं देह, मेरा देह वही जीव है। उसी समय जीव हो जाता है।

५३३. शरीर स्वप्न है और शरीर पर जो विकल्प यही स्वप्नान्तर है ा

५३४. जो दिख रहा है वह विद्या है, इसमें जो विकल्प होता है वह अविद्या है जैसे- रज्जू विद्या है, सर्प अविद्या है ।

५३५. ग्रह, कर्म, काल इत्यादि के इष्ट, अनिष्ट फल का अस्तित्व देहात्मभाव में निहित है।

५३६. अर्थहीन पदार्थ अनिर्वचनीय होता है।

५३७. अनिर्वचनीय ही भगवान होता है।

५३८. सर्वकाल में भगवान का स्मरण 'स्व' भाव में ही होता है, पर भाव में नहीं ।

५३९. 'मैं' को कुछ भी मान लेना ही मन का स्वरूप है।

५४०. चित्त का समाधान ही शिष्यत्व भाव का प्रतीक है।

५४१. आत्मबोध का फल ही चित्त का समाधान है।

५४२. पदार्थ का अनुभव होता है, अर्थ की अभिव्यक्ति होती है ।

५४३. जगत का आधार ब्रह्म अजात है इसलिये जगत भी अजात है। भगवान से मोक्ष की भी याचना न करना, भगवान की यही निष्काम सेवा है ।

५४४. प्रारब्ध का अस्तित्व मिथ्या देश में है, असत्य देश में नहीं ।

५४५. जिसके पास भगवान के सिवाय कुछ भी नहीं, वही साधु है।

५४६. भगवान का दिव्य स्वरूप भगवान के कार्य करने का उपकरण है। उसी को सगुण ब्रह्म कहते हैं।

५४७. जो दिव्य शरीर धारण करता है, उसे व्यापक ब्रह्म विश्वात्मा 'मैं' कहते है ।

५४८. सगुण ब्रह्म को प्रगट करने के लिये केवल रोना ही साधन है और व्यापक ब्रम्ह 'मैं' को जानने के लिये संत शरण ही साधन है।

५४९. यह देह है-इस विकल्प का नाम देहाध्यास है। 'में देह हूं' इसका नाम देहाभिमान है।

५५०. देहाभिमान, देहाध्यास में निहित ।

५५१. देहाध्यास, अज्ञान में निहित है ।

५५२. शरीर है, इस विकल्प का ही नाम शरीर है। शरीर है, इस विकल्प की उत्पत्ति ही शरीर की उत्पत्ति है और इसका नाश ही शरीर का नाश है।

५५३. जैसा है वैसा ही देखना। यह अमुक है, ऐसा मत देखना ।

५५४. अज्ञानी की मुक्ति बंधन से होती है और ज्ञानी की मुक्ति, मुक्ति से होती है।

५५५. अज्ञानी की मक्ति अज्ञान से होती है और ज्ञानी की मुक्ति ज्ञान से होती है।

५५६. प्रपंची का संन्यास प्रपंच से होता है और सन्यासी का सन्यास सन्यास से होता है।

५५७. जो जानता है, वह नहीं भटकता, जो मानता है वह भटकता है ।

५५८. मैं जैसा हूँ, वैसा ही हूं, यही जानना है और मैं अमुक हूं- यही मानना है।

५५९. भगवान कैसा है ? जैसा 'मै' हू ।

५६०. 'मैं' कैसा हूं ? जैसा भगवान है।

५६१. मन की दौड़ वास्तविक (ईश्वर जगत) में नहीं है, वैकल्पिक जगत (जीव जगत) में है।

५६२. बिना विकल्प के जो दिखाई पड़े वह ईश्वर जगत है और विकल्प से जो दिखाई पड़े वह जीव जगत है।

५६३. ईश्वर जगत एक होता है, जीव जगत अनेक होता है।

५६४. मानी हुई चीज़ भूलती है, जानी हुई नही।

५६५. ज्ञान दो प्रकार का एक माना हुआ ज्ञान, एक जाना हुआ ज्ञान । मैं अमुक हूं, यह माना हुआ ज्ञान है। मैं हूं, यह जाना हुआ ज्ञान है।

५६६. तमोगुणी मन में अपना स्वरूप ३।। हाथ का दिखता है, रजोगुणी मन में अपना स्वरूप अंश और अनेक दिखता है, सतोगुणी मन में अपना स्वरूप व्यापक और ब्रहम रूप दिखता है, त्रिगुणात्मक मन के अभाव में जैसा है वैसा ही दिखता है।

५६७. अपने आप 'मे' को कुछ भी मानना ही भगवान के जानने में कठिनाई है।

५६८. मैं हूं, भगवान है। मैं अमुक हूं, यही माया है।

५६९. मन, वचन, कर्म द्वारा नैतिक अनैतिक जितने भी कार्य किये जाते हैं वे सभी साधन है और जिसके लिये किये जाते हैं वही जीवन का लक्ष्य है।

५७०. कर्मों के कर्तापने का अहंकार ही कर्मों का स्वरूप है।

५७१. मैं ब्रहम हूं इस भाव में दिखने वाला शरीर है और मैं हूं इस भाव में मानने वाला शरीर है।

५७२. विकल्प जगत में मानना है, आत्मजगत में जानना है ।

५७३. मन दिखने वाले में नहीं जाता, यह अमुक दिख रहा है-इसमें जाता है।

५७४. मैं जीव हूं, इस भाव में पुण्य पाप दोनों कर्मों का अस्तित्व है, में हूं, इस भाव में नहीं है- तब पुण्य पाप कहां ।

५७५. मानी हुई चीज़ मरती है, जानी हुई चीज़ नहीं मरती ।

५७६. जो जैसा है उसको वैसा ही देखना मन वाणी से परे भगवान को देखना है। यह अमुक है ऐसा देखना, मन वाणी का विषय माया को देखना है।

५७७. मानना भिन्नता में है, जानना अभिन्नता में है। मानना ही भिन्नता है, जानना ही अभिन्नता है ।

५७८. दिखनेवाले से आंख मत मूंदों। यह अमुक है- इससे आंख मूंदों ।

५७९. भगवान को भगवान क्यों कहते हैं, इसलिये कि भगत्रान अपने 'मैं' को कुछ नहीं मानते । यहां तक कि मैं भगवान हूं यह भी नहीं मानते, उपासक भगवान को भगवान मानते हैं ।

५८०. अपने को पुरुष नहीं मानते इसलिए कामदेव के बाण मंथन करने में समर्थ नहीं हुए ।

५८१. जगत उत्पत्ति की कल्पना अमुक में निहित है।

५८२. यह अमुक है ऐसा मानकर देखने-दिखने की कल्पना होती है।

५८३. देखना-दिखना भी अमुक में ही निहित है।

५८४. मानना ही मन है। न मानना ही आत्मा में मन का लय है।

५८५. रूहानी जिदगी को हमेशा जिन्दा रखने के लिए फॉसी के तख्ते पर लटकने को तैयार रहो।

५८६. विक्षिप्त साम्राज्य में आध्यात्मिक जीवन नागरिक नहीं बन सकता ।

५८७. हेय जानकर राग-द्वेष का दूरा-तिदुर अभिवादन जय पराजय पर विजय हैं।

५८८. निर्भयता का सन्मान भगवान का सन्मानः है।

५८९. अध्यात्म जगत का नागरिक अजातशत्रु होता है।

५९०. आपत्तिजगत परीक्षा स्थल है, कारण परीक्षक है, आत्म विश्वास परीक्षा विषय है, अडिग रहना ही उत्तीर्णता है ।

५९१. आत्म विश्वास की परीक्षा के लिए सदैव आपत्ति का आवाहन कल्पनातीत शूरता है।

५९२. आध्यात्मिक जगत का राही थकान का अनुभव नहीं करता।

५९३. रागद्वयात्मक तत्वों का प्रतिवाद एवं प्रतिकार न करना ही भगवान वशिष्ठ का ब्रह्मास्त्र है।

९९४. ब्रह्मविद्या का उपासक मन, वचन, कर्म तीनों से अयाचक होता है।

५९५. स्वार्थहीन हृदय की शक्ति अक्षुण्य होती है।

५९६. यह खुदा का कलाम है,
फकीरों का पैगाम है
मस्तों का दिली जाम है,
जिन्दगी का परिणाम है।

५९७. दुनियां, दुनिया ढूंढ़ती है। भगवान संत ढूंढ़ते हैं।

५९८. दुनिया, दुनियां के पीछे चलती है, भगवान संत के पीछे चलते हैं ।

५९९. दुनिया के लिए दुनियां प्रमाण है, भगवान के लिए संत प्रमाण है।

६००. दुनिया सन्मान का स्वागत करती है, संत अपमान का स्वागत करते हैं ।

६०१. दुनिया के लिए दुनिया वैभव है, संत के लिए भगवान ही वैभव है ।

६०२. दुनियाँ, किसी से राग और किसी से द्वेष करती है, संत राग से न राग, न द्वेष से ,द्वेष करते हैं।

६०३. दुनिया मृत्यु से डरती है, संत मृत्यु का आलिंगन करते हैं।

६०४. दुनिया कोई न कोई वेशभूषा धारण करती है. संत स्वभाव धारण करते हैं।

६०५. दुनिया, अपने व्यक्तित्व की रक्षा करती है, संत अपना व्यक्तित्व खोकर सिद्धांत की रक्षा करते है।

६०६. दुनिया अपवाद का प्रचार करती है, सत सिद्धांत का प्रचार करते हैं।

६०७. जो सर्वमान्य न हो उसे अपवाद कहते हैं, जो सावभौम यानी निविरोध हो उसे सिद्धान्त कहते हैं।

६०८. दुनिया आत्म विश्वास बोकर आपत्ति का नाश करती है, संत आत्म विश्वास की रक्षा के लिए आपत्ति का आदर करते हैं।

६०९. दुनिया युग का निर्माता किसी और को मानती है, संत नवयुग का निर्माण स्वयं ही करते हैं।

६१०. दुनिया जीव से ब्रहम बनती है, संत ब्रहम को भी भ्रम ही समझते हैं।

६११. दुनिया दिखनेवाले को कुछ मानकर देखती है, संत दिखनेवाले को देखनेवाला ही जान कर देखते हैं।

६१२. दुनिया का नाश करती है, संत, शाने, अज्ञान दोनों का नाश करते हैं।

६१३. दुनिया बंध से मुक्त होती है, संत, बंध, मोक्ष दोनों से मुक्त होते हैं ।

६१४. दुनिया, मन को रोकती है, संत, मन के रोकने को रोकते हैं।

६१५. दुनिया, सिद्धियों को सिद्ध करती है, संत सिद्ध को सिद्ध करते हैं ।

६१६. दुनिया, समाधि में समाधिस्थ होती है, संत, समाधि की समाधि यानी परम समाधि में समाधिस्थ होते हैं।

६१७. दुनिया, दुनिया देती है, संत, भगवान देते

६१८. दुनिया, धनवान वनती है, संत दिवालिये वनते है ।

६१९. दुनिया, प्रपंच से सन्यास लेती है, संत, सन्यास से सन्यास लेते हैं।

६२२. दुनिया, भगवान से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष मांगती है। संत, भगवान से भगवान को भी नहीं मांगते ।

६२१. कुछ भी मत बनो, भगवान भी मत बनो, जैसे हो वैसे ही रहो, बनना ही है तो संत बनो ।

६२२. आत्म स्वरुप के बोध का यही फल है कि हमको बोध नहीं हुआ ।

६२३. अमुक जगत में देखना दिखना है, आत्म जगतमें भासना है।

६२४. दिखना, देखना सापेक्ष है। भासना निरपेक्ष है।

६२५. भासे तो आंख मत मूंदो । यदि दिखे तो आंख मूंदो ।

६२६. शरीर है इस विकल्प का नाम देहाध्यास शरीर मैं हूं इसका नाम हुआ देहाभिमान अध्यास के त्याग में अभिमान का त्याग होता है।

६२७. अज्ञानी का व्यवहार राग द्वेषात्मक होता है, बोधवान का व्यवहार राग द्वेष रहित होता है।

६२८. भास में मोह नहीं है, मानने में मोह है।

६२९. भास रहा है, वह है श्रेय, माना जाय यह है प्रेय ।

६३०. भासमान की पूजा ही पूज्य का पूजन है, इसी का नाम सेवा भी है, यही गुरुनिष्ठा अथवा गुरुभक्ति है ।

६३१. श्रेय (भास) की पूजा में गुण, दोष नहीं दिखता ।

६३२. ज्ञान जगत में प्रारब्ध है, भगवान जगत में प्रारब्ध नहीं ।

६३३. भास रहा है, (श्रेय) अकर्म है। अमुक भास रहा है, (प्रेय) कर्म है।

६३४. जैसा है वैसा ही रहो। भास का द्रष्टा मत बनो। द्रष्टा बनने पर भास दृश्य हो जावेगा । द्रष्टा, दर्शन, दृश्य यह प्रय हो जावेगा। जो प्रेय है वही जगत है।

६३५. दृश्य का परिवर्तन होता है, भास का नहीं ।

६३६. भास के बोध में अभास की अनुभूति है।

६३७. अभास की अनुभूति में भास का अभाव है।

६३८ . भास के अभाव में भूमा का आगमन है।

६३९. माया की परेशानी है अभिमान, अभिमान का सबसे बड़ा रुप ब्रह्माभिमान । ब्रह्मा- भिमान का नाश गुरु नारायण की कृपा से होता है ।

६४०. जब तक यह मन किसी भी विषय का विषय करता है तब तक इसका नाम है है मन । जब निर्विषय हो जाता है तब इसका नाम हो जाना है भास (जगती) और जो भास है वही अभास है ।

६४१. जिस समय मन दुख रुप प्रतीत हो तब मन सविषय है। जिस समय दुःख सुख दोनों की प्रतीति न हो वही निविषय है।

६४२. सविषय मन जगत है, निविषय मन जगती है। जो जगती है सो भास है । जो भास है सो अभास है (में आत्मा है)

६४३. शब्द सुनाई पडे, परन्तु अर्थ का भान न हो यही निर्विषय मन का स्वरूप है ।

६४४. इन्द्रिय द्वारा भास रहा है तब भी भास, भास नहीं । अभास में भास रहा है तब भी भास नहीं ।

६४५. परम समाधिनिष्ठ पुरुष के देश में विक्षेप भी परम समाधि है।

६४६. विशेष ज्ञान में प्रारब्ध का नाश नहीं होता सामान्य ज्ञान में प्रारब्ध का भी नाश हो जाता है।

६४७. मानने में अपरा भक्ति होती है । जानने में परा भक्ति होती है।

६४८. सर्वभावों के अभाव का दर्शन ही आत्म बोध है ।

६४९. जो हो सो हो, जहां हो वहीं हो, जैसे हो वैसे हो ।

६५०. स्वत्व के भाव में भावों का अभाव है।

६५१. अभाव के भाव में भासता स्वभाव है ।

६५२. भास के भास में भास का भास है।

६५३. भास के अभाव में भास चिदाभास है।

६५४ . 'मैं को कुछ भी मानना विपर्यय है।

६५५. अस्तित्व के अस्तित्व में अस्तित्व सदा स्वत्व है।

२५६. स्थिति की अस्थिति में अस्थिति स्थिति है।

२५७. स्थिति और अस्थिति का भास अचल स्थिति है। हो वही 'में' का रूप है।

६५८. ज्ञान का साधक अहंब्रह्मास्मि का अधिकारी है, आत्मा जिज्ञासु नारायण पद का अधिकारी है ।

६५९. जो निविरोध तत्व है वही भगवान है ।

६६०. भास के बोध में वासना का अत्यन्ताभाव। है।

६६१. जिस भाव में समस्त भावों (देह, जीव, ब्रह्म) का अत्यन्ताभाव हो वही 'मैं' का भाव है।

६६२. जिस रूप में समस्त रूपों का अत्यन्ताभाव हो वही 'मैं' का रूप है ।

६६३. जिस गुण में समस्त गुणों का अत्यन्ताभाव हो वही 'मैं' का गुण है।

६६४. जिस कर्म में समस्त कर्मों का अत्यन्ताभाव हो वही ''मैं' का कर्म है।

६६५. विकल्प का अस्तित्व विकल्पक के अबोध में हैं

६६६. विश्व की उत्पत्ति, पालन, संहार मानना यही आत्मसंमोह है।

६६७. अर्थ के भाव में दिखने देखने का भाव है।

२६८. अर्थ के अभाव में दिखने देखने का अत्यन्ताभाव है।

६६९. जो रज वीर्य से पैदा हो वह शरीर है, जो इच्छा संकल्प से पैदा हो वह रूप है ।

२७०. नाम, रूप विकल्प के बाद देश, काल, वस्तु एवं कर्ता का विकल्प होता है ।

६७१. रज्जू का भास जो आकार है वह विवर्त नहीं है, सर्प जो दिखता है वह विवर्त है। आकार जो भास है वह तो प्रकाश में भी भासता है ।

६७२. जगत दिखता है, भगवान भासता है।

६७३. रूप से अवतार है, स्वरूप से आत्मा है।

६७४. दुःखी व्यक्ति को देखकर सहानुभूति दिखाना या उसके दुःख को अपना दुःख समझना, धनी या वैभव सम्पन्न व्यक्ति के प्रति मैत्री का भाव रखना, दयावान व्यक्ति को देखकर प्रसन्न होना, और पापी को उपेक्षा की दृष्टि से देखना या उसकी ओर ध्यान न देना । इससे चित्त की शुद्धि होती है और सबसे बड़ा साधन तो सत्संग है।

६७५. मन के रोकने का अभ्यास आत्मदेश का प्रवास है ।

६७६. मन के न रोकने का अभ्यास आत्मदेश का स्थायी निवास है ।

६७७. वैकल्पिक वस्तु का चिंतन मन निरोध की अपेक्षा करता है।

६७८. आत्मचिंतन मन निरोध की उपेक्षा करना है।

६७९. आत्मजिज्ञासा आत्मदेश का प्रवेशद्वार है।

३८०. साधनों का वैराग्यवान ही आत्मदेश में पहुंच सकता है।

६८१. साधनों से वैराग्य होना संत कृपा पर निर्भर है।

६८२. संतकृपा आत्मजिज्ञासा के पुजारी पर ही होती है।

६८३. आत्मजिज्ञासा मन, वचन, कर्म द्वारा संत सेवा से ही होती है, अन्य साधनों से नहीं ।

६८४. संत उसी को आज्ञा देते हैं जो अपना व्यक्तित्व उनको नारायण जानकर आत्म समर्पण कर देता है।

६८५. मन के निरोध का फल विशेष आनंद है।

६८६. मन के अनिरोध का फल सामान्य आनंद है। सामान्य आनंद का पर्यायानंद नित्यानंद तथा आत्मानंद है। विशेष आनंद का पर्याय विषयानंद, क्षणिक आनंद है।

६८७. क्षणिक अथवा विषयानंद की अनुभूति वृत्ति द्वारा होती है और वही वाणी द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है। सामान्य

आनंद की अनुभूति वृत्ति रहित होती है क्योंकि सामान्य आनंद में स्वयं आत्मा ही है इसलिये मैं आत्मा को मन वाणी से परे बताया गया है।

६८८. संत कृपा का अनधिकारी सामान्य आनंद का आनंद रहित सुज्यता का अनुभव करता है और अधिकारी स्वयं आत्मा का ।

६८९. जिस भाव में ब्रह्मभाव और सर्वभाव दोनों का अभाव हो जाता है उसे परमगुह्मज्ञान कहते हैं।

६९०. मैं ऐसा हूं, इसका बोध अन्य कृपा पर निर्भर है। मैं जैसा है, इसका बोध 'मैं' की ही कृपा पर निर्भर है।

६९१. केवल एक ही विकल्पाभाव में अनन्त विकल्पाभाव निहित है।

६९२. बिना विकल्प के ही जो भास रहा है, बौर जिसमें भास रहा है उसमें यह भास नहीं है। न होते हुए जो भास रहा है यही भगवान आत्मा की माया है।

६९३. विकल्प की ही व्याख्या और व्याख्यान है।

६९४. जिस समाधि में ये सब समाधियों (सविकल्प, निर्विकल्प आदि) समाधिस्थ हो जाती हैं उसे परम समाधि कहते हैं ।

६९५. मलिन ज्ञान में प्रारब्ध शेष है, विमलज्ञान में प्रारब्ध का भी नाश है ।

६९६. कर्म यदि सत्य है तो इनकी निवृत्ति नहीं हो सकती और यदि असत्य है तो है ही नहीं । इसलिए कर्म न सत्य है न असत्य बल्कि भगवान आत्मा 'मैं' पर कर्म का विकल्प है।

६९७. विकल्प है ही नहीं यही सम्यक प्रकार से विकल्प का अभाव होना है।

६९८. अनुभवकाल में अनुभव नहीं इसलिए नहीं और विकल्पकाल में विकल्प नहीं इसलिए नहीं ।

६९९. यदि अनेक 'मैं' हो तो सबका लक्ष्य भी भिन्न भिन्न हो, परन्तु ऐसा नहीं है। सबका लक्ष्य एक ही है- आनंद की प्राप्ति, इस- सबका 'मैं' एक है ।

७००. विकल्प (मान्यता) और विकल्पक (मान्यता का आधार) के योग को कहते हैं योगमाया ।

७०१ है यदि 'है' न होता तो किसी में होता किसी में न होता इसलिए 'है' ही है जो कहता है 'है' ।

७०२. कर्म जगत में विचार की गुंजाइश नहीं है और ज्ञान जगत में मान्यता की गुंजाइश नहीं है।

७०३. जिस भाव का बुद्धि श्रोत है वह सीमित होता है और जिस भाव का श्रोत 'मैं' हूं वह असीमित होता है।

७०४. किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व का परिज्ञान उसके कार्य (सिद्धान्त) पर निर्भर करता है।

७०५. चित चित्त देश में है तो चित्त नहीं, चित्त चित् देश में है तो भी चित्त नहीं ।

७०६. चित्त का अस्तित्व चित् है, अस्तित्व पर विकल्प चित्त है

७०७. चित्त में जो 'त्' है यही अस्तित्व पर विकल्प है और चित्त में जो चित् है यही चित्त का अस्तित्व है ।

७०८. इन्द्रियां विषयों को ग्रहण करती हैं और आत्मा ग्रहण किये हुए का अनुभव करता है।

७०९. परमात्मा यदि अपने आप को कहे कि मैं परमात्मा हूं तो में भो कहूं कि मैं परमात्मा हू ।

७१०. ग्रहणकाल में नश्वर है, अनुभवकाल में 'मैं' ही हूं ।